सुरखाब के पंख

हिन्दी ADDA

कबीर संजय

सुरखाब के पंख

शिकार की बात रात में ही तय हो गई थी। सो, लल्लन सुबह दफ्तर गए और हाजिरी मार कर चले आए। आते ही उन्होंने अपनी दोनाली बंदूक साफ की। कारतूसों का डिब्बा निकाला और उसमें से एक-एक कारतूस निकाल कर पेटी में सजाने लगे। मोटे कागज के लाल-लाल कारतूसों का ढक्कन पीतल का था। इसी पीतल के बीच में एक छोटा सा हिस्सा उभरा हुआ। यहीं पर घोड़े की चोट पड़ते ही गोली चलती है। बंदूक की नाल में जंग सी लगने लगी थी। पहले एक ब्रश से फिर थोड़ा सरसों का तेल लगा कर ब्रश के ऊपर लपेट कर उसे नली के अंदर घुसाया गया। नली साफ हो गई। पिछले साल दीपावली के बाद से बंदूक का इस्तेमाल नहीं हुआ था। आज इसे शिकार में आजमाया जानेवाला था।

जितनी देर में बंदूक की साफ-सफाई हुई, उतने में ही शिकार पर जानेवाले अन्य साथी भी तैयार हो गए। मक्खन नेता और टिड्डी मुन्ना के पास एकनाली बंदूकें थीं। अपनी कमर में कारतूसों की पेटी बाँध कर वे भी तैयार थे। इसके अलावा तेलिया रोशन, पेड़की दादा, परभू भी शिकार पर जानेवाले थे। चलते समय लल्लन का एक बेटा धीरज चुपचाप उनके पीछे लग लिया। जबकि, लल्लन के दूसरे बेटे अंची ने शिकार पर जाने के लिए एक दिन पहले ही बुकिंग करा ली थी।

दशहरे के दो दिन बाद एक त्योहार पड़ता है। ढेढ़िया। इस दिन घर की बच्चियाँ बड़ों के सिर पर से शनीचर उतारती हैं। एक जालीदार मिट्टी की गगरी को ढेढ़िया कहते हैं। इसमें नीचे थोड़ा सा चिवड़ा और रेवड़ी रख कर, उसके ऊपर एक दिया जला कर रख दिया जाता है। जालीदार गगरी से दिए की रोशनी छन-छन कर बाहर आने लगती है और उसकी रोशनियों के निशान पूरी दीवारों पर पड़ने लगते हैं। रोशनी के अद्भुत डिजाइन चारों ओर छपने लगते हैं। इस ढेढ़िया को अपने बड़ों के सिरों पर सात बार चक्कर लगाते हुए छुआया जाता है। माना तो यह जाता कि इससे बड़ों के सिर पर चढ़ा हुआ शनीचर उतर जाता है। रक्षाबंधन और भइयादूइज से काफी मिलते-जुलते इस त्योहार में बच्चियों को ढेढ़िया उतारने के बदले में कुछ पैसे नेग में दिए जाते हैं।

लेकिन, जहाँ तक बात शनीचर उतरने की है, इसके बाद शनीचर को और प्रबल होते ही देखा गया। ढेढ़िया के बाद दीपावली आने में मुश्किल से पंद्रह दिन का वक्त रह जाता है। ढेढ़ियावाले दिन से ले कर दीपावली तक लोगों पर जुए का नशा सा चढ़ जाता है। रात-रात भर जुआ चलने लगता है। यहाँ तक भी कहा जाता है कि ढेढ़िया के दिए में जलने वाली बाती जिसके पास होती है जुए में उसके जीतने के चांस कई गुना बढ़ जाते हैं। इसके चलते जब ढेढ़िया फोड़ी जाती है तो कई लोग उसकी बाती लूटने की फिराक में रहते हैं। ये कहावत अंची ने भी सुन रखी थी। इस बार उसने भी ढेढ़िया की बाती लूटने की कोशिश की, लेकिन उसे कामयाबी नहीं मिली।

लल्लन के यहाँ भी रात में जुआ चला था। बिना दारू के जुआ कैसे होता। इसलिए हर बाजी में से पाँच-पाँच रुपए निकाल कर शराब भी मँगाई गई थी, हार-जीत की बिना परवाह के सभी ने जम कर शराब पी। कुछ ऐसे भी थे जो पैसे तो हार गए थे और अब केवल पीने के लिए ही वहाँ बैठे हुए थे।

अंची आम तौर पर इसी कमरे में सोता था। जुए की भीड़-भाड़ में उसके लिए सोना मुश्किल था। वह जाग कर पत्तों का खेल देख रहा था। टी-टी। एक-एक कर सभी को नौ-नौ पत्ते बाँटे गए। इनमें से तीन-तीन पत्तों के हाथ यानी सेट तैयार करने होते। पत्तों

के तीनों सेट को एक-एक करके चला जाता। इन तीन बाजियों में से दो जिसने जीत लिया, दाँव पर लगाए गए पैसे उसके हो गए। दाँव पर हर बार दस रुपए की चाल रखी जाती। पाँच आदमी खेलते, इसलिए हर बार आम तौर पर पचास रुपए का दाँव होता। अगर किसी ने दो हाथ नहीं जीते, तो फिर फैसला अगली बाजी पर होगा। इससे दाँव पर लगे पैसे बढ़ भी जाते। रात मक्खन नेता की जोरदार थी। पत्तों ने तो जैसे उनके हाथों को पहचाना हुआ था। बाजी पर बाजी उसके हाथ लग रही थी। अब दूसरे लोगों ने पत्तों को अपनी तरफ खींचने के लिए टोटके आजमाने शुरू किए। टिड्डी मुन्ना को विश्वास था कि अगर उनकी एक चप्पल उलट के रख दी जाए तो पत्ते उनके पास लौट-लौट कर आने लगेंगे। जबकि, परभू कुछ इस अदा से पत्तों को छिप-छिप कर खोलते थे जैसे एकबारगी सामना होने से पत्ते घबरा जाएँगे। लल्लन भी जब कई बाजी लगातार हार गए तो उन्होंने अंची को अपने पास बैठा लिया। अगली बार उन्होंने अंची से पत्ते उठाने के लिए कहा। मक्खन भाई ने पत्ते बाँटे। एक-एक करके सभी को नौ-नौ पत्ते। अपने पापा के पत्ते अंची ने उठा। सचमुच पत्ते अच्छे आ गए। लल्लन ने बाजी जीत ली। अंची भी गर्व से भर उठा। इसके बाद तो जैसे पत्ते उठाने की जिम्मेदारी ही उसकी बन गई।

मेरे हाथ में आनेवाले पत्तों में जादू का जोर है, यह एहसास ही अंची को उत्साह से भर देने के लिए काफी था। रात भारी होने लगी, लेकिन जुआ चलता रहा। अंची की आँखें लाल होने लगीं। नींद से भर उठीं। वह चुपचाप उठा और जा कर बिस्तर पर लेट गया। उसे नींद आई और वह सो गया। लेकिन, कुछ ही देर बाद लल्लन लगातार पाँच-छह बाजियाँ हार गए तो वे फिर से अंची को उठा लाए। उन्होंने उसे अपने पास बैठा लिया और पत्ते उठाने को कहा। अब तक अंची के गर्व पर नींद हावी हो चुकी थी। वह उनींदे-उनींदे ही पत्ते उठाता और उनके हाथ में दे कर सो जाता। पत्तों की तरफ पूरी आँख भर कर वह देखता भी नहीं था। खैर, जो भी हो जुआ चलता रहा। और इसी जुए के बीच में ही अगले दिन शिकार पर जाने की बात तय हो गई थी। अंची ने रात भर अपने पापा के पत्ते उठाए थे, इसलिए शिकार पर जाने की उसकी बुकिंग पहले ही पक्की हो चुकी थी।

सभी ने अपनी-अपनी बंदूकें कंधे पर टाँग लीं। गंगा की तरफ चल पड़े। नवंबर की शुरुआत हो रही थी। धूप का दम टूटने लगा था। सूरज अब दिन में आँखें चमकाता हुआ अपना क्रोध प्रगट नहीं करता। अब तो जैसे वह दिन भर प्यार और दुलार की नियामत बरसाने लगा था। धूप में बैठ कर सुख मिलता। दिन के बारह बज रहे थे। लेकिन, गंगा के कछार में दूर-दूर तक हल्की धुंध सी छाई हुई थी। सर्दियों के आने के

साथ ही गंगा का पानी कम होने लगता है। हिमालय के ग्लेशियरों के पिघलने की रफ्तार कम हो जाती है। बल्कि रुक सी जाती है। इसके चलते नदियाँ सिर्फ जगह-जगह फूटनेवाले सोतों से निकले पानी पर ही आश्रित हो जाती हैं। यह सर्दियों का सूखा था। गंगा में जगह-जगह पर रेत के टापू निकल आते हैं। इन टापुओं में से कई तो एकदम पानी से भीगे रहते हैं, बस जरा सा खोदो और पानी चुहचुहाने लगेगा। जबकि, कुछ सूख जाते हैं। इन पर लहरों के चलने के निशान बने होते हैं। इसलिए रेत कुछ-कुछ घुँघराले से फर्शवाली हो जाती है।

मक्खन ने इसी साल नई नाव बनवाई थी। लेकिन, नाव के डाँड़ खुद मक्खन सँभालते, इससे पहले ही आगे बढ़ कर तेलिया रोशन ने नाव की बागडोर अपने हाथ में ले ली। खुद वह नाव पर सबसे पहले चढ़ गया। उसने एक-एक कर सबको नाव पर चढ़ने दिया। सब के लिए जगह खाली की। चप्पलें एक जगह उतरवाईं और नाव पर प्लास्टिक की बोरियों को जोड़ कर बनाई गई दरी पर सबको बैठा दिया। इसके बाद लंगर उठा कर उसने नाव में रख दिया। एक डाँड़ से उसने किनारे की रेत में जोर लगाया और तेजी से नाव को ठेल दिया। नाव हल्के झटके के साथ पानी की सतह पर तैरने लगी। उसने जल्दी-जल्दी डाँड़ मारते हुए नाव खेना शुरू कर दिया। ऐसा नहीं करने पर नाव के बहाव के साथ बह जाने का खतरा था। गंगा और जमुना के बहाव में अंतर होता है। इलाहाबाद में दोनों बहती हैं। गंगा का बहाव तेज होता है। गंगा अपना रास्ता बदलती रहती हैं और दूर-दूर तक कछार बनाती हुई चलती हैं। यमुना ज्यादा शांत, धीर गंभीर हो कर चलती है। यहाँ तक कि दूर से देखने पर धारा का पता भी नहीं चलता। जमीन को गहरा करते, एक ही रास्ते पर सदियों से चलते हुए। यमुना का हरा, धानी रंग। जबकि, गंगा का रंग कुछ-कुछ मटियाला हरा, या फिर सफेदपन लिए हुए मटमैला। संगम पर इन दोनों नदियों के बीच का फर्क साफ देखा जा सकता है।

तेलिया रोशन ने नाव का एक बड़ा चक्कर लेना शुरू किया। ताकि नाव को तेजी से खेते हुए उस पार ले जाया जा सके। अपना लक्ष्य उसने उस पार की रेत में एक जगह को बना रखा था। नाव को उसी जगह पर पहुँचाना था। उसके हाथ में डाँड़ तेजी से चल रहे थे। इसी बीच परभू को भी जोश आ गया। उसने कहा, लाव हम चलाई। उसने नाव में पड़ा हुआ बाँस निकाल लिया। केतना पाई होई हियाँ। रोशन ने कहा, हियाँ न चली बाँस, हियाँ दुई हाथी का डुबाव होई। पानी की गहराई नापने का अनोखा मापदंड है हाथी।

परभू ने जब बाँस को गहरे में गड़ा कर देखा तो सचमुच पूरा बाँस अंदर चला गया और सतह नहीं मिली। उसने कोशिश छोड़ दी। बाँस को ऊपर कर लिया। लेकिन, बाँस

गीला हो गया था। उससे पानी चू रहा था। अब बाँस नाव में रखता तो पूरी नाव गीली हो जाती। सो वह बाँस को पानी में बहाता हुआ सा पकड़े हुए चलता रहा। डाँड़ खेने की मेहनत रोशन के चेहरे पर दिखने लगी। उसके माथे पर हल्के पसीने की बूँदें चुहचुहा आईं। उसने कमीज उतार दी। बनियान में उसकी काली लंबी बाँहें चमकने लगीं। जब डाँड़ उठा कर वह पानी को ठेलता तो बाजू की मछलियाँ चमकने लगतीं। अंची ध्यान से गंगा के पानी को देख रहा था। नाव के पीछे कतार बाँध कर कुछ कीड़े तैर रहे थे। पानी में कहीं-कहीं मटियाले रंग का फेन तैर रहा था। जब डाँड़ का चप्पू उठा कर पीछे रख कर पानी को ठेला जाता तो पानी में छोटे-छोटे भँवर से बनने लगते। नाव से थोड़ी दूर पर ऐसा लग रहा था जैसे पानी उबल रहा हो। नीचे का पानी ऊपर आता और ऐसे भँवर बनाता जैसे उसे नीचे से खौलाया जा रहा हो। यहाँ पर पानी बहुत गहरा होगा, मीर को लगा।

गंगा के किनारे बसा हुआ यह एक गाँव था। गाँव भी क्या कहिए, अब तो यह शहर के एक मोहल्ले में तब्दील हो चुका है। मल्लाहों की पूरी बस्ती। कुछ अन्य जातियों के मकान। और अब तो बाहर से आ कर बसे हुए लोगों की भी इफरात। लेकिन, मोहल्ले के पुराने बांशिंदों के बीच अभी-भी खास ही रिश्ते थे। लल्लन परिवार से खेतिहर थे। लेकिन, खेती की जमीनें बाद में हुए विकास की भेंट चढ़ गईं। लोगों को रहने के लिए मकानों की जरूरत पड़ी तो आवास-विकास ने परिवार की ज्यादातर जमीनें अधिग्रहीत कर लीं।

खेती करना तब भी लल्लन के खून में तो था लेकिन स्वभाव में नहीं। लेकिन, खेत जाने के बाद तो जैसे हाथ-पैर ही कट गए। कुछ पैसे मुआवजे में मिले। लेकिन, उन रुपयों के हाथ-पैर कहाँ उगे, वे कहाँ चले गए, कुछ पता नहीं चला। कभी बिजली मिस्त्री का काम किया तो कभी किराए पर टैक्सी चलाने का। लेकिन बात बनी नहीं। भाग्य अच्छा था कि सरकारी अस्पताल में ड्राइवर की नौकरी मिल गई। काम ज्यादा नहीं था। दिन भर बस आफिस में ही बैठना होता था। डाक्टर साहब को अगर कहीं जाना हो तो उनकी गाड़ी ले कर जाओ। नहीं तो बैठे रहो आफिस में। हाँ, कभी-कभी जब डाक्टर साहब दौरे पर निकलते तो सुबह पाँच बजे से ही ड्यूटी लग जाती। माघ मेले के समय भी ड्यूटी कठिन थी। लेकिन, डाक्टरों के साथ रहते-रहते लल्लन की पहचान भी बहुत हो गई। उस समय लोग इतनी दूरियाँ बना कर नहीं रखते थे। इसलिए जब किसी मरीज को दिखाने के लिए लल्लन अपने डाक्टर के पास ले जाते थे वह कुछ-कुछ हँसी-मजाक करता हुआ देख ही लेता था और दवा भी देता था। सामान्य तौर पर किसी डाक्टर के पास अस्पताल में जा कर दिखाना एक टेढ़ी खीर थी। लेकिन,

लल्लन फटाक से अस्पताल की पर्ची बनवा देते और डाक्टर भी मरीज को देखने में काफी समय लगाता। इसके चलते मोहल्ले में भी उनकी धाक सी जमी हुई थी।

नाव तेजी से तैर रही थी। तेलिया रोशन ने उसे एक किनारे की तरफ से काटना शुरू कर दिया। मोहल्ले में हर एक के कई-कई नाम थे। एक तो माँ-बाप ने दिया था। दूसरा मोहल्ले-पड़ोस ने। और कई बार तो लोगों ने अपनी सुविधा के हिसाब से भी नाम रख लिए थे। तेलिया रोशन का नाम तो रोशन ही था। लेकिन मोहल्ले में कई माँ-बापों को अपने बच्चे से नाम रोशन की उम्मीद थी। इसलिए रोशन नाम रखनेवालों की भी भारी तादाद थी। ऐसे में कोई कन्फ्यूजन न रहे। इसलिए बचपन में सिर पर सरसों का तेल चुपड़ने की आदत का पीछा करते हुए लोगों ने उनके नाम रोशन के आगे तेलिया का उपसर्ग जोड़ दिया। मोहल्ले के एक दूसरे रोशन अपने बाप के नाम से जाने जाते थे। उनके नाम के पीछे महाराज का उपसर्ग लगाया गया था। इसी तरह टिड्डी मुन्ना भी थे। मोहल्ले में कई लोगों के बच्चों के नाम मुन्ना थे। इसलिए समान आयु के मुन्नाओं की पहचान गड़बड़ाने लगती थी। बचपन में दुबली-पतली कद-काठी के चलते उन्हें टिड्डी मुन्ना कहा जाने लगा। दरअसल, टिट्डहा मोहल्ले की भाषा में एक चिढ़ानेवाला शब्द था। जबकि, दूसरे मुन्ना का नाम मुन्ना पहलवान था। समझ ही सकते हैं कि यह नाम भी उनकी कद-काठी के चलते ही पड़ा होगा। नाम की महिमा तो मोहल्ले में अजीब ही है। बंगाली परिवार के पिंकी दादा का नाम तो माता-पिता ने कुछ सोच कर ही पिंकी रखा होगा। लेकिन, यहाँ तो पिंकी पेड़की में तब्दील हो गया। सब उन्हें पेड़की दादा ही बुलाते। उनके बड़े भाई खोक्खन का असली नाम क्या होगा, यह समझ पाना तो बेहद मुश्किल ही है। भगवान यादव का नाम भी सोच-समझ कर ही रखा गया होगा, लेकिन हर कोई उन्हें परभू कह कर बुलाता।

नाम की तो महिमा ही अपरंपार है। मोहल्ले के एक बड़े ही सशक्त महानुभाव है। गाय-गोरू से घर-परिवार भरा हुआ है। उनके माँ-बाप ने तो उनका नाम बड़ा चुन कर फूलचंद रखा। लेकिन, अपने बच्चों के मामले वे ज्यादा सृजनशील साबित नहीं हुए। बड़े बेटे का नाम रखा मुन्ना, उसके बाद फिर लड़का हुआ तो नाम रखा बच्चा, फिर लड़का हुआ नाम पड़ा मँझिलका बच्चा, फिर लड़का हुआ नाम पड़ा ननका बच्चा, इसके बाद फिर भगवान ने मेहरबानी की और लड़का हुआ तो नाम पड़ा ननका। यानी नामों का एक अंतहीन सिलसिला। यहीं पर छुटकारा नहीं। मुन्ना के यहाँ जब पहली किलकारी गूँजी और लड़का हुआ तो नाम उन्होंने रखा गोजर, दूसरा हुआ तो गोरई। नामों का यही सिलसिला आगे बढ़ता रहा। नाम रखना इतना कठिन भी नहीं। पहले तो नामों को सुन कर उनकी उत्पत्ति के बारे में अनुमान करना भी मुश्किल हो जाता

था। बद्दों के बाप टिर्रा हैं तो माँ डिलिआइन। कहाँ से निकला होगा यह नाम। वे दिल्ली की हैं। दिल्ली से ब्याह कर आई हैं। तो नाम पड़ गया डिलीआइन। सुरसतिया का असली नाम क्या होगा, यह सोच-सोच कर हर कोई हैरान रह जाता था। सुरसति या सूरसति से तो अर्थ बैठता नहीं। बाद में पता चला कि असली नाम है सरस्वती। एक भाई का नाम गब्बर रखा तो दूसरे का रख दिया ट्रैक्टर। एक बाप ने थोड़ा खोजबीन कर अपने बेटे का नाम कुछ अलग सा रखने की कोशिश की तो उसने उसका नाम रख दिया त्रिमूर्ति। अब सब उसे तिनमुढ़हा, तिनमुढ़हा कहते हैं। यानी तीन सिरोंवाला। माँ-बाप ने नाम रखा चतुरानन, मोहल्लेवालों ने अपनी सुविधा के लिए कर दिया चौमुहा।

मनोज दो थे। एक मनोज पेंटर थे। तो दूसरा लिप्टहा मनोज। नाम से ही समझ सकते हैं। पेंटर मनोज तो दीवारों पर कंपनियों के विज्ञापन लिखने का काम करते थे। जबकि, लिप्टहा मनोज के हाथ में बचपन में ही गुड़ लिपट गया था। नाम की कहानी का तो कोई ओर-छोर नहीं है। क्योंकि, यहाँ पर पगलाइन, कंजा, लिल्लिल, पकीपोल और न जाने कितने नाम हैं। इनमें से कुछ की व्युत्पत्ति को समझना तो आसान है तो कुछ ऐसे हैं जिनका लाख सिर भिड़ा लो, ओर-छोर समझना मुश्किल होगा। ये जरूर है कि नाम से कई बार यह अंदाजा लगाना जरा भी मुश्किल नहीं रहता कि ये कई लोग आपस में भाई-बहन हैं।

नाम की बात चल रही है तो एक मजेदार किस्सा और याद आ रहा है। दिवाली के बारह दिन बाद एक त्यौहार पड़ता है डिठवन। महिलाएँ एकादशी का व्रत करती हैं। बच्चे दीपावली के बचे हुए पटाखे बजाते हैं। घर के काम-काज में इस्तेमाल किया जानेवाला एक जरूरी उपकरण है सूप। चावल और गेहूँ पछोरने से ले कर उसके तमाम काम है। सूप के बिना तो शादी-ब्याह की भी कल्पना नहीं की जा सकती। कबीर ने भी सूप की महिमा जानते हुए साधुओं को सूप जैसा स्वभाव धारण करने की शिक्षा दी। यानी सार को अपने पास रख लो। थोथे को फेंक दो। तो डिठवन में इस सूप का बहुत बड़ा काम था। दरअसल इस दिन सूप बदला जाता था। पुराने सूप को रात भर खपरैल पर रख दिया जाता था। तड़के घर की महिला उठ कर इस सूप को गन्ने की फुनगी से पीटती थी। सूप से निकली धप-धप की आवाज के साथ ही नारा लगाया जाता है, ईश्वर आवै, दलिद्दर जावै। ईश्वर आए, दलिद्दर जाए। सूप को थपथपाते हुए इस नारे को लगाते हुए पूरे घर भर की परिक्रमा जरूरी थी। इससे होता यह था कि घर में ईश्वर आ जाते थे और दलिद्दर भाग जाते थे। घर के एक-एक कोने से उन्हें सूप पीट कर भगा दिया जाता था। बाद में इस सूप को आग के हवाले कर दिया जाता था। इसकी लपटों से

निकली सेंक सबको लेनी पड़ती थी। इससे भी सिर पर चढ़ा दलिद्दर भाग जाता है। लेकिन, अगर कोई रात के समय जब सूप खपरैल पर रखा रहता है, उस समय उसे चुरा ले और उसकी लपट से अपना बदन सेंक ले तो साल भर तक उसके सामने टिकने की औकात दलिद्दर भाई साहब की नहीं रहती। और जुए के खेल में तो उसकी पौ बारह हो जाती है। पत्ते बार-बार घूम कर उसके पास ही चले आते हैं।

अब समझ ही सकते हैं कि इस मान्यता के चलते मोहल्ले में कितनी रार पैदा होती थी। डिठवन की सुबह होती नहीं कि अपनी खपरैल पर रखा सूप गायब देख कर किसी की मेहरारू किसी को गरियाती हुई दिखाई पड़ती, तो किसी दूसरे की मेहरारू किसी दूसरे को। इस मान्यता का साइड इफेक्ट यह था कि सूप तो चोरी हो गया, अब दलिद्दर को साल भर तक टिकने का बहाना मिल गया और ईश्वर को साल भर तक नहीं आने का। कई बार तो ऐसे भी वाकए हुए कि किसी की मेहरारू घर भर में सूप पीट कर ईश्वर के आने और दलिद्दर के भागने का नारा लगा ही रही थी कि उसी समय चादर ओढ़ कर आया कोई दलिद्दर उसके हाथ से सूप छीन कर ही भाग जाता। तड़के चार बजे वह अपना सूप छीने जाने पर रोती-चिल्लाती-कलपती और सौ-सौ गालियाँ देती। लेकिन, सूप तो तब तक हवन हो चुका रहता।

डिठवन के दिन ईश्वरचंद की मेहरारू के सामने गंभीर मुश्किल आन खड़ी होती। जब सब लोग ईश्वर आवै दलिद्दर जावै, कहते रहते तो उसके मुँह से बोल नहीं फूटते। ईश्वर तो पति का नाम है। पति का नाम कैसे लें। तो उसने अनोखा तरीका निकाला। सूप पीटते समय उसका नारा सबसे जुदा था। दूर से अलग ही उसकी आवाज सुनाई पड़ती। ओनहीं आवैं, दलिद्दर जाए। ओनहीं आवैं, दलिद्दर जाए। अब ईश्वर तो खैर घर में ही थे। बाहर से कहाँ आते, लेकिन यह है कि दलिद्दर भाग रहा था। हर दो साल में बच्चों की संख्या में इजाफा हो रहा था। इसी के साथ ही गाय-भैंस भी बढ़ रही थी। और ईश्वर को बच्चों के बढ़ने से ज्यादा खुशी गाय-भैंस के बढ़ने से ही होती थी। पूरे मोहल्ले में गाय या भैंस की खीस पहुँचाई जाती। उबालने के बाद गाढ़े थक्के में जमने वाली खीस, गुड़ या चीनी डाल कर जब पेश की जाती तो किसी नेमत से कम नहीं लगती। किताब पढ़ने से बच्चे बिगड़ सकते हैं इसलिए ईश्वर के किसी बच्चे ने स्कूल नहीं देखा। गाय-भैंस बढ़ती गई, उन्हें चराने और सानी-पानी करनेवालों के हाथ बढ़ते गए। उन्हें बाँधने के नाम पर ज्यादा से ज्यादा जगह घेरी जाती रही। और घर से दलिद्दर भागता रहा। ईश्वर को अपनी गाय-भैंस बच्चों से भी ज्यादा प्यारी थी।

लड़की की शादी हुई तो बारात में एक बाराती ने शराब पी कर हंगामा कर दिया। फिर क्या था। पूरी बारात को बाँध दिया गया। दूल्हे और उसके बाप ने चूँ-चपड़ की कोशिश

की तो उन्हें भी आँखें तरेर कर चुप कराया गया। बंदूकों के साए में सात फेरे हुए। दूल्हे ने अपनी जान बचाने के लिए जैसे-तैसे फेरे पूरे किए। अगले दिन सुबह विदाई हो गई। ईश्वर को सात फेरों और मंत्रों की शक्ति पर बहुत यकीन था। एक बार बेटी विदा हो गई, फिर तो वो ससुराल की हो गई। अब उससे क्या। अब तो वह पराई हो गई। गर्दन पर बंदूक रख कर जिस बेटी का विवाह किया, उसने अपने ससुराल में क्या-क्या भोगा, मोहल्ले में कम ही लोग इसके बारे में जान पाए। हालाँकि, उस गाँव में एक-दो घरों की बेटियाँ और थीं, जिनसे किस्से पता चलते रहते थे। लेकिन, ईश्वर के लिए यह कोई मुद्दा नहीं था। क्योंकि, बेटी तो पराई हो गई। अब तो जो उसका भाग्य। लेकिन, डिठवन के दिन उनकी पत्नी सूप पीट कर ओनहीं आवैं, दलिद्दर जाए की गुहार लगाते हुए जरूर दिखती। और सचमुच दलिद्दर भाग रहा था। गाय-गोरू बढ़ रहे थे। हालाँकि, कछार में मटर काटने को ले कर हुई मारपीट में एक बेटा शहीद हो गया और उसका बदला लेने की जिद में दूसरा बेटा गुंडा। उसे भी जेल में ही आश्रय मिला। लेकिन, कुल मिला कर देखा जाए तो ईश्वर की संपन्नता बढ़ रही थी। क्योंकि, बच्चे चाहे कितने कम हो जाएँ, गाय-भैंस बढ़ रही थी। असली दुख तो उन्हें तब होता जब गाय-भैंस कम हो जाती। गोबर की खुशबू ही उनके जीवन का सबसे बड़ा प्राप्य था।

आसमान के भी रंग बदलते रहते हैं। मई-जून में निचाट और धूसर सा लगनेवाला आसमान जुलाई-अगस्त में नीला हो जाता है। नीले आसमान में भाप से भरे चटक सफेद, चाँदी जैसे और पानी से भरे काले बादलों की रेस लगी रहती है। बादल आसमान को ढँक लेते हैं। लेकिन, बादल हटते हैं, तो आसमान धुला-धुला सा लगता है। बारिश के साथ ही धूल-धुआँ सब जमीन में बैठ जाता है और आसमान एकदम नीला हो जाता है। शाम को जब कछार में सूरज सिर छिपाने की जगह ढूँढ़ने लगता है तो पूरी शाम ही साँवली और सुरमई हो जाती है, बादलों के छोटे-छोटे गुच्छे गुलमोहरों की तरह सूरज की किरणों का पीछा करते हुए उसके आसपास जुट जाते हैं। सितंबर-अक्टूबर में भी आसमान का नीला रंग काफी हद तक बरकरार रहता है। लेकिन, नवंबर-दिसंबर में आसमान के नीले रंग पर धूसर रंग फिर हावी होने लगता है। दिसंबर और जनवरी के दो महीनों में तो खैर आसमान के दर्शन भी कई बार नहीं हो पाते। क्योंकि, कोहरे और ओस से आसमान ढँका रहता है। सूरज दिन भर कोहरे की चादर को चीरने की कोशिश करते, श्रीहीन हो कर कहीं एकांत में जा कर सिर छिपा कर बैठ जाता है। कब सूर्योदय हुआ, कब सूर्यास्त, पता ही नहीं चलता। ये कोहरे के दिन जैसे जीवन को ही अपने में समेट लेते थे।

लेकिन, अभी कोहरे के आने में देर थी। ये नवंबर का मौसम था। कोहरे की हल्की चादर अलग ही छटा का निर्माण कर रही थी। बाढ़ के बाद नदी ने एक बड़ा सा पाट छोड़ा था। अगस्त में आम तौर पर बाढ़ उतरने लगती है। इस मौसम में दूर-दूर तक नदी के पानी में सड़नेवाली वनस्पतियों की गंध फैली रहती है। यह बाढ़ के गंध जैसी लगती है। लेकिन, नवंबर तक सड़ी हुई वनस्पतियाँ, मिट्टी, कीचड़ सब सूख जाता है। बाढ़ की गंध खतम हो जाती है। टखने के बराबर पानी में बगुले एकटक मछली के अपने पास आने के इंतजार में एकटक खड़े रहते हैं। एक पैर को आराम देने के लिए एक पैर पर खड़े रह कर वे अपने दूसरे पैर को ऊपर पंखों के बीच छिपा लेते हैं। अंची ने देखा, नदी की धारा के ऊपर एक पक्षी काफी देर से मँडराता रहा। अचानक ही अपने पंख फड़फड़ाते हुए वह हवा में ही एक जगह पर रुक गया। उसने नदी की सतह पर मछली की चमक देख ली। पानी के अंदर मछली पर सूरज की एक किरण पड़ी और मछली के शल्कों से वह किरण वैसे ही टकरा कर लौटी जैसी शीशे से टकरा कर लौटती है। पक्षी ने उस लौटती हुई किरण को देखा और एकटक हवा में पंख फड़फड़ाते हुए लटकते-लटकते अचानक ही अपने को छोड़ दिया। जैसे आसमान में टँगी कोई चीज जमीन पर गिरने लगी। पक्षी की चोंच पानी की तरफ थी। उसने झट से डुबकी लगाई, मछली को अपनी चोंच में दबाया, और पलक झपकने जैसी डुबकी के बाद ऊपर निकल आई। मछली उसकी चोंच में झटके मार रही थी। ये गंगा की जलपाखी है। किंगफिशर के जैसे। ये पाउड किंगफिशर है।

अंची एकटक इस खेल को देख रहा था। नदी पर उड़ते जलपाखी। अचानक एक जगह टँग कर आसमान में पंख फड़फड़ाना और नदी के पानी में सीधे गिर पड़ना। पानी में डुबकी मार कर मछली पकड़ना और उसे दबाए हुए दोबारा हवा में।

गंगा जीवनदायिनी है। जीवन और कुदरत के इस तरह के खेल यहाँ पर दिन भर चलते रहते। सदियों से ही। गंगाजी की ही आस पर पूरा मोहल्ला जीवित था। मल्लाहों का तो पूरा जीवन ही नदी के इर्द-गिर्द ही बीतता था। नदी में मछलियों की भरमार थी। टेंगरा, सेवरी, माँगुर, गेगरा, बैकरी, पड़िहना जैसी तमाम मछलियों की बहुतायत। रात के समय जाल लगाना और तड़के जाल निकालना और फँसी हुई मछलियों को ले कर बाजार में बेचना दिनचर्या का एक बड़ा हिस्सा था। इसके अलावा गंगा नहाने आनेवालों को नाव से गंगा स्नान कराने के लिए उस पार ले कर जाना भी बहुतों के रोजगार का हिस्सा था। बरसात बीतने के बाद जब बाढ़ का पानी उतर जाता था तो दूर-दूर तक कछार निकलने लगते थे। इन कछारों पर बाढ़ के साथ लाई गई उपजाऊ मिट्टी की मोटी परत चढ़ी रहती। इस पर तरबूज, खरबूज, खीरा, ककड़ी, लौकी,

नेनुआ, कोंहड़ा जैसी तमाम चीजें उगाई जाती थीं। एक खास किस्म का चावल लुचुई भी मल्लाह बड़े शौक से उगाते थे। धान की अन्य किस्मों से छोटे, हल्की लाल आभा लिए हुए इस चावल को बेहद गुणकारी माना जाता। कछार की जमीन हर साल भागती-बदलती रहती है। इसलिए हर साल जमीन का बँटवारा एक बड़े ही सामाजिक तरीके से किया जाता।

मल्लाह बिरादरी के हर चूल्हे के हिसाब से कछार के छोटे-छोटे टुकड़ों का बँटवारा कर दिया जाता था। इसी हिसाब से उस पर खेती होती थी। इसके अलावा आमदनी का एक बड़ा साधन श्मशानघाट भी था। यहाँ का श्मशानघाट पूरे शहर में ही प्रसिद्ध था। मान्यता थी की कि यहाँ पर दाह संस्कार के बाद मृतक को सीधे स्वर्ग में एंट्री मिलती है। इसके चलते यहाँ पर दाह संस्कार से जुड़ा हुआ भी एक पूरा कारोबार था। इसका बड़ा हिस्सा दाह संस्कार की लकड़ियों का था। मल्लाह बिरादरी के हर परिवार की पारी बँधी हुई थी। इसी पारी के हिसाब से सभी को बारी-बारी से दाह संस्कार के लिए लकड़ियाँ बेचने का मौका मिलता था। यह कारोबार भी फायदे के कामों में शामिल था। इसके अलावा जमुना की बालू सप्लाई करने का काम भी एक मुख्य काम था। गंगा की बालू का इस्तेमाल निर्माण सामग्री के तौर पर खास नहीं। लेकिन, जमुना की बालू निकालने के लिए हजारों लोग जुटे रहते हैं। यमुना की बालू एक खास मोटाई की होती है। जिसे सीमेंट में मिला कर चिनाई और पलस्तर आदि के काम किए जाते हैं। बालू के इस कारोबार पर भी ज्यादातर मल्लाहों का ही कब्जा था।

अब नदी के इस पार और उस पार में बिंधे जीवन में गंगा की महिमा का बखान तो शामिल ही था। नाव तैर रही थी। तेलिया रोशन अपने दोनों हाथों में डाँड़ के सिरे पकड़े हुए थे। वह हाथों को कंधे के पीछे तक पूरी गोलाई में ले जाता और डाँड़ के अगले हिस्से में लगे चप्पू को नदी की सतह में एक जगह से उठा कर दूसरी जगह रखता और पूरी ताकत से पानी काटता। नाव आगे बढ़ती जाती।

नदी के पानी में हाथ डाल कर मक्खन ने कहा, पानी ठंडा होइगा है।

टिड्डी मुन्ना ने भी हामी भरी, हाँ, कमौ होइगा।

गंगा के पानी में कमी भी एक प्रकार से जाड़े का ही संकेत है। क्योंकि, बरसात में विशाल आकार ग्रहण कर लेनेवाली गंगा जाड़े में काफी सिकुड़ सी जाती थी। और दूर-दूर तक कछार निकल आते थे।

गंगा और शिकार से जुड़े रोचक किस्से शुरू हो गए। पहले गंगा में आई बाढ़ की चर्चा शुरू हुई। पहली शिकायत तो यही प्रकट की गई कि अब गंगा में कहाँ वह बाढ़ आती है जो पहले आती थी। एक बार की बाढ़ में तो गंगा किनारे बने हनुमान जी के मंदिर के ऊपर लगे पाँचों कलश डूब गए थे। लेकिन, मंदिर की महिमा भी कम नहीं। कलश के सब से ऊपर त्रिशूल नहीं डूबा था। अगर यह त्रिशूल भी डूब जाता तो फिर तो दुनिया में प्रलय आ जाती। खास बात यह भी रही कि इसी त्रिशूल पर पानी में बह कर आए किसी नाग ने भी शरण ले ली थी। बाढ़ में मंदिर के पास जाने की सामर्थ्य तो हर किसी के पास नहीं थी लेकिन दूर से भी लोग मंदिर के त्रिशूल और उस पर बैठे साँप को देखने आते रहते। कहनेवाले तो यहाँ तक कहते कि पानी जितना बढ़ता जाता त्रिशूल भी उतना ही ऊपर उठता जाता। त्रिशूल को कोई बाढ़ डुबा नहीं सकती। त्रिशूल अगर डूब गया तो पूरी दुनिया में प्रलय आ जाएगी।

बाढ़ शिकार के मौके भी आसान कर देती है। बाढ़ के समय कछार में बिल बना कर रहनेवाले खरहे अपने बिलों को छोड़ने के लिए मजबूर हो जाते हैं। कई बार तो उन्हें तैर कर भी दूरी पार करनी पड़ती है। ऐसे मौकों पर उनका शिकार आसान हो जाता है। यूँ तो खरहों की झलक मिलना भी आसान नहीं होता। लेकिन, बाढ़ में तैरते समय उनका शिकार लाठी की चोट से भी आसानी से किया जा सकता है। फिर शुरू हुआ सुईस का किस्सा। सुईस मीठे पानी की डॉल्फिन है। लेकिन, यहाँ उसे इस नाम से कोई नहीं जानता। मक्खन किस्सा सुनाने लगे। बाढ़ के समय एक बार जाल लगाया गया था। उसमें बछड़े के बराबर सुईस फँस गई। जब जाल निकालने लगे तो पता चला कि अरे ई तो बहुत भारी है। बाहर लाए तो पता चला कि सुईस फँसी है और छटपटा रही है। लेकिन, गंगा मइया की महिमा है, हमने सुईस को हाथ नहीं लगाया। जाल से निकाल कर उसे दोबारा पानी में छोड़ दिया गया। लेकिन, इससे भी ज्यादा रोचक किस्सा एक बार जाल में फँसे घड़ियाल का था। नदी में घड़ियाल नहीं थे। लेकिन, बाढ़ के समय घड़ियाल के कहीं से बह कर आने के किस्से कई लोगों के पास थे। गंगा के पानी में घड़ियाल की बात सुनते ही अंची ने तुरंत ही पानी में से अपना हाथ बाहर कर लिया।

बाढ़ की बात छोड़ो, इस समय कछार में मिलेगा क्या-क्या। लल्लन शिकार की बात पर वापस लौटते हुए बोले।

बागडोर सँभाली परभू ने, चाहा के तो कई झुंड आए हैं चचा। दिन भर कछार में ही घूमते रहते हैं। इसके अलावा सुरखाब भी दिख रहे हैं। बस एक-दो हाथ लग जाएँ।

बाढ़ से उबरी जमीन पर हक जमाने के लिए तमाम जगहों के परिंदे भी इकट्ठे होने लगते थे। चाहा और सुरखाब इनमें से सबसे ज्यादा सामान्य हैं। सुरखाब ऐसे पक्षियों में शामिल हैं जिन्होंने दुनिया की सीमाओं में बँधना नहीं सीखा है। अमेरिका, अफ्रीका से मध्य एशिया और साउथ एशिया में इनके झुंड के झुंड उड़ा करते हैं। सुरखाब यानी सुनहरे पंखोंवाला। मौसम के हिसाब से ये अपने आशियाने तलाशते हैं। सर्दी के मौसम में सुरखाब के कई झुंड उत्तरी भारत के मैदानों में भी प्रवास करते हैं। अफगानिस्तान, पाकिस्तान और भारत के अलावा कई देशों में ये जीवन के हिस्से में किसी न किसी तरह से शामिल हैं। अफगानिस्तान में सुरखाब के नाम पर एक नदी का भी नाम है। जबकि, पाकिस्तान में सुरखाब बेहद पसंदीदा टाइटलों में शामिल है। भारत में कहीं इन्हें चकवा-चकवी कहा जाता है तो कहीं इसे ब्राह्मणी बत्तख। बाकी दुनिया इसे रडी शेल्डक के नाम से जानती है। सुरखाब का नाम ही है सुनहरे पंखोंवाला। सुरखाब के पंख कभी नवाबों की पगड़ी की शान हुआ करते थे। अब दूल्हे के सेहरे में भी सुरखाब के पर लगाए जाते हैं। दुर्गा पूजा के दौरान भी सुरखाब के परों की कलँगी का इस्तेमाल किया जाता है।

टिड्डी मुन्ना ने जानकारी में इजाफा किया, सुरखाब हमेशा जोड़े में रहत है, एक मर गा, तो समझ लेओ की दूसरे की जान भी न बची।

सुरखाब का नाम सुनते ही अंची के कान खड़े हो गए। धीर अंची से चार साल बड़ा था। दोनों भाइयों के बीच एक बहन भी थी जो पैदा होने के डेढ़ साल बाद सही ढंग से इलाज नहीं कराए जाने के कारण मर गई। बीमारी उसकी बढ़ गई थी। लेकिन, इलाज उसका गाँव के ही झोलाछाप डा. अतहर करते रहे। लल्लन की अस्पताल की नौकरी, डाक्टरों से जान-पहचान, इस सबका कुछ भी प्रयोग नहीं किया गया। बेटी जैसे आई थी चुपचाप वैसे ही चली गई। अपनी माँ की गोद में जब उसने आखिरी हिचकी ली, उस समय अंची माँ के पैट में लात मारने लगे थे। एक बच्चा कोख में पल रहा था। और गोद के बच्चे की मौत हो गई। माँ के दुख की क्या गिनती।

धीरज जब पैदा हुए थे, बहुत दुर्बल थे। उनके भी बचने की उम्मीद कम थी। साँस चलती थी। रात में साँस साँय-साँय करने लगती। माँ घबरा जाती। रात भर जाग कर कड़ुवा तेल गरम कर शरीर की मालिश की जाती। तलवे में ब्रांडी लगाई। न जाने कितने लोगों से बीमारी झड़वाई। मजार पर सिर झुकाया। प्रसाद की मनौतियाँ मानीं। सत्यनारायण भगवान की कथा सुनी। धीर की जान बच गई। लेकिन, वे रह गए कमजोर और दुर्बल। थोड़ा बड़ा होते ही उन्होंने दुनिया को अपने नजरिए से देखने की शुरुआत कर दी। छह साल के हुए तो घर के बगलवाले नगर महापालिका के स्कूल में

एडमीशन करा दिया। नर्सरी, एलकेजी, यूकेजी की तो बात ही छोड़ दीजिए। यहाँ पर पहली कक्षा गदहिया गोल से शुरू होती थी। यानी जिसको कुछ नहीं आता। धीर इसी में पढ़ने लगे। मास्टर जी पढ़ाई के बीच-बीच में एक शीशी से कुछ निकाल कर पिया करते थे। एक दिन मास्टर जी की निगाह चूकी तो धीर ने उनके झोले से निकाल कर पूरी शीशी गटक ली। कुछ ही देर में उनकी आँखें उलटने लगीं। जब मास्टरजी ने पूछा कि क्या हुआ तो दूसरे बच्चों ने बताया कि शीशी उलट ली। हंगामा खड़ा हो गया। मास्टर जी ने पहली धार की देशी शराब की शीशी रखी हुई थी। उनका कहना था कि बच्चे की तबियत खराब है इसलिए उसकी मालिश के लिए उन्होंने शीशी खरीदी थी। धीर बेहोश।

पानी डाला गया। दवाएँ खिलाई गईं। उल्टियाँ शुरू हुईं। चार-पाँच दिन बाद किसी तरह से तबीयत कुछ काबू में आई। दुनिया को कुछ इसी नजरिए से देखने की आदत धीर की पड़ गई। हाथ में गुलेल लिए दिन भर पक्षियों का पीछा करते। निशाना भी अचूक। खंबे पर बैठी गौरैया को काँच की गोली गुलेल में साध कर एसी मारी कि सीधे जा कर उसे लगी। गौरैया जमीन पर। चोंच से जीभ बाहर निकलने लगती। उसकी गर्दन काट कर उसका खून गुलेल को पिला दिया। इससे निशाना पक्का होता है। गुलेल बनाने के लिए सही डाल की तलाश करने के लिए नीम की टुन्नी पर चढ़ जाते। गंगा में तैरने जाते थे तो ऐसा तैरते थे कि तैरने और जमीन पर दौड़ने में फर्क ही नहीं रहता। मल्लाहों जैसे ही पानी के कीड़े। मछली मारने में भी उस्तादी। लेकिन, एक बार स्कूल में घटी घटना के बाद उन्होंने स्कूल से तौबा कर ली। समय कटे कैसे तो गुलेल और मछली का जाल था ही।

अंची का स्वभाव अलग था। धीर और अंची के बीच में पैदा हुई बहन ने काफी अंतर कर दिया। अंची जब पैदा हुए तब तक उनकी माँ अपनी बेटी की मौत के सदमे से काफी कुछ उबर गई थीं। हालाँकि, ज्यादा वक्त नहीं हुआ था। क्या कोई एक सदमा झेलने के बाद दोबारा सदमे के पहले जैसा हो सकता है। बेटी की मौत के तीन महीने बाद ही अंची पैदा हुए। बेटी के मरने पर वे ठीक से रो भी नहीं पाईं। क्योंकि, बार-बार कोख में पलती जान की परवाह सामने आ जाती थी। माँ की इस उदासी ने अंची को भी घेरा हुआ था। पैदा होने के बाद जब वे अपने पैरों पर दौड़ने लायक हो गए, उस समय भी आम तौर पर वे गुमखयाल और संजीदा ही दिखते। जरा सी बात पर आँखें भर आतीं। कहें किससे। कहें या न कहें, हमेशा एक संकोच में रहते। लेकिन, इस संजीदगी ने उन्हें किताबों की दुनिया में धकेल दिया। वास्तविक दुनिया में उन्हें जो चीज नहीं मिली, उसकी तलाश उन्होंने कहानियों में करनी शुरू कर दी। एक तरह की

खब्तुलहवासी छाई रहती। कई बार तो नजदीक खड़ा हो कर कोई पुकारता रहता और वे सुन भी नहीं पाते। एक बार तो डाक्टर से उनके कानों की जाँच भी कराई गई। लेकिन कमी कोई नहीं पाई गई। माँ बताती, तुम्हारी एक बहन भी थी। तुम्हारे पैदा होने के तीन महीने पहले ही उसकी मौत हो गई थी।

फिर माँ अपनी बेटी में खो जाती। बिटिया गोरी थी। चंचल थी। अपनी आँखों से टुकुर-टुकुर ताकती रहती थी। जब दूध पिलाती तो दूध चूसते हुए एकटक माँ को देखती रहती थी। माँ काम में लगी रहे तो धीरे से अम्माँ-अम्माँ कह कर पुकारने भी लगती थी। और रात में तो सीने से चिपक कर सो जाती थी। सोते समय भी उसके हाथ दूध पर टिके रहते थे। जब उसकी मौत हुई तो जैसे आँचल ही सूख गया।

अंची तीसरी कक्षा में पहुँच चुके थे। चौथी कक्षा में भी पास हो जाने की उन्हें पूरी उम्मीद थी। नीलकंठ दिख जाना शुभ होता है। बच्चों की पढ़ाई का भी वे सटीक अनुमान वे देते हैं। कुछ दिनों पहले एक पेड़ पर नीलकंठ बैठा हुआ था। अपने अन्य सहपाठियों की तरह ही अंची ने भी नीलकंठ से पूछा था, नीलकंठ-नीलकंठ, फेल होना बैठे रहना, पास होना उड़ जाना। उनके पूछने पर नीलकंठ उड़ गया था। यानी अगली कक्षा में उड़ कर उनके पहुँचने के पूरे चांस हैं। कक्षा में सभी बच्चे इसी तरह से अपने फेल-पास का अनुमान पहले ही लगा लेते थे।

इसके बाद, अंची ने अपनी किताब में विद्या का पेड़ भी रखा हुआ था। सरो वृक्षों से मिलती जुलती यह एक खास प्रजाति थी। मोरपंखी। इसकी सिरेनुमा पत्तियाँ आगे घूम कर गोल आकार लेती हुई लगतीं। कुछ इसे मोरपंख कहते तो कुछ इसे विद्या का पेड़ कहते थे। यह विद्या का पेड़ उन्होंने अपनी कापी में रखा हुआ था। इसके अलावा उन्होंने नीलकंठ का पंख भी जमा कर रखा था। नीलकंठ भगवान शिव का दूत है। नीलंकठ अगर चाह ले तो शिव की खास कृपा हो सकती है। नीलकंठ ही कक्षा में फेल या पास करा सकता है। इसलिए नीलकंठ का पंख अंची ने खास सँभाल कर रखा हुआ था।

अब सुरखाब का नाम सुन कर उनके कान खड़े हो गए। तुम्हारे अंदर क्या सुरखाब के पंख लगे हुए हैं। यानी सुरखाब का पंख कुछ खास है। अंची ने सोचा कि वह सुरखाब का भी एक पंख अपने पास जमा कर लेगा। जब लोग सुरखाब का शिकार कर लेंगे, वह चुपचाप वहाँ जाएगा और चुपके से सुरखाब का एक पंख नोंच लेगा। जैसे एक बार गुड़िया के बाल बनाने के लिए उसने घोड़े के पूँछ के बाल नोच लिए थे। घोड़े से लात

मारने का खतरा भी था। लेकिन, सुरखाब कुछ नहीं करेगा। अंची चुपचाप उसके पंख चुरा लेगा।

इसी सुरखाब के लिए शिकारियों का यह दल नाव से गंगा पार निकल आया था। गंगा की कछार में भी सामने की ओर घाट था। यहाँ पर सुबह के समय नहाने के लिए बड़ी संख्या में लोग आते थे। लेकिन, दिन भर सन्नाटा रहता था। इसके बावजूद सुबह के समय होनेवाली चहल-पहल के चलते यहाँ पर पक्षियों की आमद कम ही होती। इसलिए नाव को यहाँ से काफी आगे दूर लगाया जाना था। नाव नदी के जिस किनारे से चली थी वहाँ से बहाव काटते हुए भी वह घाट से ज्यादा दूर नहीं जा पाई। इसलिए किनारे लगने पर अब रोशन नाव से उतरा। उसने अपनी पैंट घुटनों के ऊपर तक मोड़ ली और नाव को एक रस्सी के सहारे खींचने लगा। थोड़ी ही देर में परभू भी इसमें शामिल हो गया। अंची के लिए यह बेहद हैरानी भरी बात थी। दो आदमी मिल कर इतने लोगों से भरी नाव को खींचे ले जा रहे थे। नदी की धारा तेज थी। कई-कई जगह पर सफेद मटमैले रंग का फेन उतरा रहा था। नाव के पानी के साथ कुछ दूरी तक खिंच कर पानी में छोटे-छोटे भँवर भी बन रहे थे। नाव को घाट से दूर खींच लाया गया। यहाँ पर लंगर डाल दिया गया। शिकारियों के दल ने अपनी कंधों पर बंदूकों को सीधा किया। लाल-लाल रंग के कारतूसों की पेटी अपनी कमर पर बाँध ली और नाव से उतर पड़े।

कछार के खेत की बँटाई का काम हो चुका था। दूर-दूर तक खेतों को अलगाने के लिए सरपत की दीवार खड़ी की जा चुकी थी। सरपत की इन दीवारों से दो फायदे थे। एक तो खेत की सीमा का पता चल जाता था; दूसरे, रेत उड़ कर खेत की मिट्टी को नहीं ढँक पाती थी। खेतोंवाले हिस्से को पार करने के बाद दूर-दूर तक फैला कछार शुरू हो गया। यहाँ पर दूर-दूर तक खाली मैदान था। रेत और मिट्टी से भरा हुआ। कुछ जगहों पर सरपत के झुरमुट खड़े थे तो कुछ जगहों पर कुछ अन्य झाड़ियों के। यहीं पर खड़े हो कर सब लोग आभास लेने लगे। अब तक ज्यादातर जगहों पर बगुले ही दिखाई पड़े थे। लेकिन, यहाँ पर चाहा का एक झुंड दिखाई पड़ा। सरपत के एक झुरमुट की आड़ ले कर लल्लन, मक्खन और टिड्डी मुन्ना ने अपनी-अपनी बंदूकों में कारतूस भर लिया। 12 बोर की इस कारतूस से बारूद और छर्रे पिचकारी से छोड़े गए पानी की तरह निकलते हैं। यानी आगे की तरफ वे ज्यादा से ज्यादा चीजों को अपनी चपेट में लेते हैं। जबकि, रायफल की कारतूस एक सीध में चलती है। उसकी गोली घातक तो होती है लेकिन निशाना चूकने की संभावना भी ज्यादा होती है। फिर किसी पक्षी को रायफल की गोली लगने से उसके चीथड़े उड़ जाने की संभावना ज्यादा है।

तीनों ने अपनी बंदूकों से झुंड का निशाना साध लिया। पहले लल्लन ने अपनी दोनाली बंदूक से फायर किया। एक और दो। इसके साथ ही मक्खन और टिड्डी मुन्ना की बंदूक भी गरज उठी। पहली गोली की आवाज सुनते ही चाहा के झुंड में खलबली मच गई और वे उड़ चले, लेकिन उड़ते-उड़ते ही लगातार चली तीन और गोलियों ने कुछ को अपनी जद में ले लिया। उड़ने का प्रयास करते दो पक्षी वहीं पर गिर पड़े और तड़फड़ाने लगे। परभू भाग कर उनके पास पहुँचा और इन्हें अपने कब्जे में कर लिया। इस बीच दोनों पक्षियों ने दम तोड़ दिया। जबकि, थोड़ी ऊँचाई पर उड़ने के बाद एक और पक्षी तड़फड़ाता हुआ नीचे गिर पड़ा। उसे भी कब्जे में कर लिया गया। जबकि, एक अन्य पक्षी का पंख घायल हो गया था। उसे पकड़ने के लिए रोशन उसकी तरफ भागा। पक्षी के पंख उड़ने के काबिल नहीं रहे। लेकिन, अपनी लंबी-लंबी टाँगों पर वह जान ले कर भागा। रोशन उसके पीछे भागा। लेकिन, जैसे ही रोशन झुक कर उसे पकड़ने को होता वह गोल चक्कर ले कर, पैंतरा बदल कर दूसरी दिशा में भागने लगा। रोशन हाँफने लगा। अब चाहा को पकड़ने के लिए परभू और धीर भी नीचे उतर गए। तीन तरफ से घेर कर उसे कब्जे में कर लिया गया। चाहा के दोनों पंख एक-दूसरे में फँसा कर बाँध दिए गए। पक्षी की चोंच से जीभ बाहर आ गई। और वह तेज-तेज हाँफने लगा। कुछ ही देरी में उसके मुँह से लार गिरने लगी और उसने अपनी अंतिम साँसें ले लीं।

गोलियों की आवाज पूरे कछार में गूँज उठी थी। तड़ातड़। कगार की ऊँची-ऊँची दीवारों में सुराग करके घोंसला बनाने वाले मैना तेज आवाज करके आकाश में मँडराने लगे। चाहा को समेटने के बाद शिकारियों ने देखा कि दूर कहीं कुछ लोग भाग रहे हैं। वहाँ पर से उठता हुआ हल्का धुआँ भी दीखने लगा। जिसे बुझाया जा रहा था। चाहा के झुंड में से चार पक्षियों की बलि इस शिकारी दल ने ले ली थी। इस बीच कछार की हलचलों को देख कर सब उसी तरफ चल पड़े। यह समझने में किसी को भी देर नहीं लगी कि वहाँ पर क्या हो सकता है।

दरअसल, जिस एक धंधे का जिक्र ऊपर नहीं किया जा सका था वह था कच्ची शराब। कच्ची शराब नदी की सतह पर तैरते हुए चलनेवाले इस जीवन का उल्लास था तो यही उनके दुखों का कारण भी। अंग्रेजी शराब महँगी थी। देशी मसालेदार शराब पीना भी हर किसी के बस की बात नहीं थी। इसलिए कच्ची शराब सबके लिए सुलभ थी। कछार में जगह-जगह उसकी भट्टियाँ लगी हुई थीं। बेहद आसान तरीके से कच्ची शराब बनाई जाती थी।

सरसों का तेल टिन के कनस्तर में आता है। तेल खाली करने के बाद भी इस कनस्तर का इस्तेमाल बहुतेरा है। कनस्तर के किनारे बने एक छोटे सुराख से तेल निकाल

लिया जाता है। इसी कनस्तर को साफ करके इसके अंदर गुड़, महुआ, अंगूर, अन्य प्रकार के फल आदि सभी सड़ा दिए जाते हैं। तीन चार दिन रखने के बाद इनमें से एक खास प्रकार की बदबू सी उठने लगती है। इसके बाद इस कनस्तर को आग की भट्टी पर चढ़ा दिया जाता है। कनस्तर के तेल निकालनेवाले गोल सुराग से एक पाइप जोड़ दिया जाता है। सुराख के मुहाने पर पाइप लगाने के बाद अच्छी तरह से आटे से बंद कर दिया जाता था ताकि भाप वहाँ से न निकले। भट्टी पर चढ़े कनस्तर को खौलाया जाता। इसके बाद भाप धीरे-धीरे पाइप के जरिए बाहर आने लगती। पाइप के एक सिरे में बोतल लगा दी जाती। भाप यहाँ पर आ कर बूँद-बूँद करके टपकने लगती। पहली बोतल होती पहली धार की, दूसरी बोतल दूसरी धार की। पहली धार की शराब सबसे तेज। थोड़ा सा जमीन पर गिरा कर माचिस दिखा दो, भक्क से आग पकड़ लेगी।

शराब की ऐसी ही भट्टी होने की भनक उन्हें वहाँ लग गई थी। दरअसल, कछार में जगह-जगह बन रही भट्टियों के चलते वहाँ पर आबकारी विभाग का छापा भी अक्सर ही पड़ता रहता था। आबकारीवाले नाव पर चढ़ कर तो कभी कछार की दूसरी ओर से वहाँ आते थे और भट्टियों को नष्ट कर देते थे। शराब बनानेवालों को पकड़ ले जाते थे। उन्हें जेल हो जाती थी। हालाँकि, जेल से आने के बाद वे फिर से उसी धंधे में लग जाते। लेकिन, इस बीच भी कछार में भट्टियों की संख्या कम नहीं थी।

कई बार शराब बनानेवालों और आबकारीवालों के बीच झड़प भी हो जाती थी। ऐसे मौकों पर कछार गोलियों से गूँजने लगता था। इस शिकारी दल के कंधे पर टँगी बंदूकों और गोलियों की तड़ातड़ से भट्टीवालों ने सोचा कि आबकारी का छापा पड़ा है। इसलिए वे जल्दी से भट्टियों को बुझा कर और माल को छुपा कर वहाँ से भाग खड़े हुए। लगभग दौड़ते हुए ये शिकारी भी वहाँ पहुँच गए। वहाँ पर कुछ भी नहीं था। जानेवाले भट्टी बुझाने के साथ ही अपने साथ माल ले कर भी चले गए थे।

लेकिन, परभू की नाक बहुत तेज थी। उसने बालू को ही सूँघना शुरू किया। जहाँ भट्टी थी, जहाँ राख गिराई गई थी, उन जगहों पर बारीकी से निगाह डाली, फिर एक किनारे जा कर हाथ से ही बालू खोदने लगा। थोड़ा सा खोदने पर ही पतले कनस्तर की दीवार दिखाई पड़ने लगी। कनस्तर देख कर तो उसका उत्साह दोगुना हो गया। खोक्खन, रोशन, परभू ने मिल कर कनस्तर के चारों ओर की बालू हटानी शुरू की। कुछ ही देर में पूरा एक कनस्तर उनके हाथ में था। देसी शराब से भरा। परभू ने कनस्तर सूँघा। एकदम ताजी शराब है। पहली धार की। इसकी जाँच कैसे हो, कनस्तर में से शराब की कुछ बूँदें रेत पर गिराई गईं। माचिस की तीली दिखाते ही शराब ने भक्क से आग पकड़ ली। एकदम पहली धार की है। बस, पूरा कनस्तर कब्जे में। शिकार का मजा दोगुना हो

गया। चार चाहा हाथ में आ ही चुके थे, इसके बाद एक पूरी कनस्तर भर शराब भी हाथ लग गई। इससे बढ़ कर क्या हो सकता है। शिकार में अब कइयों की रुचि खतम हो गई। लेकिन, अभी दिन काफी बचा हुआ था। फिर चाहा में ज्यादा मांस होता नहीं, इसलिए चार चाहा तो दावत के लिए कुछ नहीं है। कछार का एक चक्कर मार लेना ही ठीक है।

शराब का कनस्तर नाव में रख दिया गया। सब लोग फिर से शिकार की तलाश में आगे निकल पड़े। बालू थोड़ा पक्की होती जा रही थी। बाढ़ के साथ लाई गई मिट्टी की मात्रा यहाँ की रेत में ज्यादा थी। बीच-बीच में सरपत के झुरमुट भी उगे हुए थे। यहाँ से वहाँ तक, कछार का विस्तार दूर-दूर तक फैला हुआ था। शिकारी दल को देख कर एक टिटिहरी तेजी से टिट्-टिट् करने लगी। वो तेजी से उड़ते हुए आती और रेत में एक जगह को लगभग छूती हुई तेजी से ऊपर उड़ने लगती। इसके साथ ही तेजी से टिट्कार करती, टिट्-टिट्। टिटिहरी यूँ तो शिकार किए जानेवाले पक्षियों में शामिल नहीं थी। और टिटिहरी का मांस कोई खाता भी नहीं, इसके बावजूद शिकारियों की उत्सुकता उसकी तरफ जाग गई। जरूर वहाँ पर कोई टिटिहरी का घोंसला है। उसी की रक्षा के लिए वो इतना टिटकार करने लगी है। रोशन और खोक्खन तेजी से उस ओर भागे। काफी देर तक वे रेत में कहीं पर टिटिहरी का घोंसला तलाशते रहे। लेकिन, घोंसला हाथ नहीं लगा। टिटिहरी अपनी चाल में कामयाब हो गई। उसने रेत में ही एक जगह छोटे-छोटे कंकड़ों को घेर कर घोंसला बनाया हुआ था। जैसे उसने अपने घोंसले के नजदीक शिकारियों को आते देखा। वो तुरंत ही घोसले के एकदम विपरीत दिशा में जा कर टिटकार करने लगी। शिकारियों ने सोचा कि उसका घोंसला यहाँ होगा और वे वहाँ चले गए। टिटिहरी की यही चाल तो है जिसे वह हरदम तब अपनाती है जब कोई उसके नजदीक चला आता है। वह घोंसले के नजदीक आनेवाले को कन्फ्यूज कर देती है। यहाँ तक कि कई बार तो कुत्ते और सियार भी उसकी चाल से कन्फ्यूज हो कर घोसले से काफी दूर चले जाते हैं।

वैसे भी शिकारियों को टिटिहरी के घोंसले से कुछ खास हासिल नहीं होता। यह तो बस घोंसला देखने की उत्सुकता ही थी। इसलिए थोड़ी ही देर में उनकी दिलचस्पी खतम हो गई। और सभी लोग आगे बढ़ने लगे। कुछ ही दूरी पर जा कर सरपत के झुंड थोड़े घने हो गए थे। ऐसा लग रहा था कि वहाँ से कुछ दूरी पर पानी का कोई तालाब सा बन गया है। ऐसे तालाबों में मछलियों की भरमार हो जाती है। दरअसल जब बाढ़ का पानी उतरने लगता है तो कई जगह से रेत उभरने लगती है। लेकिन, कुछ जगहें जो ज्यादा

नीची होती हैं, वहाँ पर पानी भरा रह जाता है। ये ही कछार में एक प्रकार के तालाब हो जाते हैं। ऐसे तालाब में मछलियाँ होती हैं, इसलिए पक्षी भी होते हैं।

शिकारी धीरे-धीरे चलने लगे। उनकी साँसें तेज हो गईं। लेकिन आपस में बोल-चाल बंद हो गई। उन्होंने वहाँ पर सुरखाब के दो जोड़े देखे। पंख एकदम सुनहरे। गर्दन किसी बत्तख जैसी ही शानदार और सुडौल। कुछ देर तो वे सुरखाब को देखते ही रह गए। शिकारियों ने अपनी बंदूक की बट को कंधे पर अच्छी तरह से गड़ा दिया। नाक को बंदूक की नाल से एकदम सीध में कर लिया। एक आँख मींच ली। दोनाली बंदूक के बीच में लगी छोटी सी मक्खी को बिलकुल सुरखाब के निशाने पर किया। वहाँ पर चार सुरखाब थे। लेकिन, वे सारे एक साथ नहीं थे। सुरखाब हमेशा जोड़े में रहते हैं। इसका मतलब है वे दो जोड़े थे। सुरखाबों पर शिकारियों का निशाना सध चुका था। बंदूक की बट को कंधे पर ठोस सहारा देते, नाक को नाल से सटाते और एक आँख को मींचते हुए पहली गोली चली। इसके बाद एक-एक कर तीन और फायर हुए। बारूद की एक फुहार सी पक्षियों के ऊपर टूट पड़ी। लेकिन, इससे पहले कि गोलियों के छर्रे उनके ऊपर गिरते, उनकी आवाज पक्षियों के पास पहुँच गई। अपने भारी पंखों को फैला कर उन्होंने तुरंत ही हवा में छलाँग लगा दी। वे उड़ने लगे। लेकिन, एक सुरखाब पहली ही छलाँग के बाद गिर पड़ा। उसका एक पंख टूट गया था। उसकी गर्दन में भी एक छर्रा लगा था। वो नीचे गिर कर तड़पने लगा। तेजी से उसने फिर उठने की कोशिश की। फिर से हवा में छलाँग लगाने की कोशिश। लेकिन इस बार वह मुँह के बल गिरा। उसकी गर्दन बालू में लिथड़ती चली गई। उसकी चोंच में ढेर सारा बालू भर गया। एक बार तो वह जमीन पर पीठ के बल लोट गया। फिर उछलने की कोशिश की। फिर छलाँग लगाने की कोशिश की। लेकिन, उसकी परवाज थम चुकी थी। थोड़ी देर तक छिटकने के बाद उसने दम तोड़ दिया।

जब शिकारी उसके पास पहुँचे तो उसमें प्राण नहीं थे। वह मर चुका था। सुनहरे रंग के उसके पंख जो किसी कलँगी की शोभा बनते, बालू और रेत से सने हुए थे। शिकारियों ने उसे कब्जे में किया। सुरखाब काफी वजनी था। उसके वजन और सेहत को देख कर तो यही लगता था अब तक उसकी जिंदगी काफी अच्छी बीती थी और उसे बहुत पर्याप्त मात्रा में मछलियाँ, घोंघे और कीड़े आदि मिलते रहे होंगे। अब ज्यादा शिकार करने की जरूरत नहीं थी।

चार चाहा और एक सुरखाब मिला कर कुल पाँच पक्षी शिकार में मिल गए थे। बालू में गड़ा मिला अमृतघट का कनस्तर भी शिकार की ही उपलब्धि रहा है। अब और क्या चाहिए। अब तो बस इसकी दावत का इंतजाम किया जाए। बस अब लौट चला जाए।

कनस्तर पहले ही नाव में रखा जा चुका था। रोशन और खोक्खन ने अपने दोनों हाथों में चाहा लटका रखे थे। चाहा के पैर पकड़े हुए थे। इससे वे उलटे लटके हुए थे। ठीक इसी तरह परभू ने सुरखाब लटका रखा था। सुरखाब की लंबी गर्दन और चोंच कई बार रेत में लिथड़ने लगती तो भगवान उसे थोड़ा सा ऊपर कर देता। नाव पर ला कर एक कोने में पक्षियों को भी रख दिया गया। नाव को अब किनारे की तरफ खेना है। रोशन ने फिर डाँड़ सँभाली। इसके बाद चप्पू धीरे-धीरे चलाने लगा।

कुछ ही दूरी पर उमरसिंह और किरीचंद अपना जाल समेट रहे थे। पानी में ही लंगर डाल कर उन्होंने नाव खड़ी की हुई थी। दोनों नाव के एक किनारे बैठ कर जाल उठा रहे थे। जाल में फँसी मछलियों को बीन-बीन कर वे एक तरफ रखते जा रहे थे। नाव में ही एक तरफ तसले में उन्होंने कुछ कंडे जलाए हुए थे और उस पर एक भगौना रखा हुआ था। इस भगौने में मछलियाँ पक रही थीं।

शिकारियों को देख कर उन लोगों ने दूर से पूछना शुरू कर दिया। अरे चचा कुछ हाथ लगा कि नहीं। रोशन ने ही थोड़ा गर्व भरी मुद्रा में आँखों से उन लोगों को पक्षियों की ओर इशारा किया। लेकिन, इससे भी बड़ा माल तो कनस्तर में था। उमरसिंह और किरीचंद ने जब शराब की कनस्तर की बात सुनी तो उनकी भी बाँछें खिल गईं। दोनों नावें करीब लगा ली गईं। दोनों दिन भर और कई बार तो रात-रात भर मछली मारते रहते थे। इसके चलते उन्होंने नाव के तसले में ही मछली पकाने की व्यवस्था भी कर रखी थी। तसले में भगौना चढ़ा कर मछली पकाई जाती। खाने के लिए दो थालियाँ भी थीं। गंगा के पानी से तुरंत ही थाली धो ली गई। इसके साथ ही दोनों थालियों में मछलियाँ परोस दी गईं। नाव में पीने के लिए गिलास तो थे नहीं। लेकिन, नाव से पानी उलीचने के लिए उसमें कुछ छोटे-छोटे डिब्बे जरूर रखे हुए थे। इन्हीं डिब्बों में कनस्तर की शराब ढाली जाने लगी। इसमें गंगा का पानी मिला कर जाम चढ़ाया जाने लगा। लल्लन ने भी एक जाम चढ़ाया। मक्खन ने भी। इसके बाद दूसरे की बारी आई। रोशन ने पहले खाली डिब्बे में गंगा का पानी भरा, उसके बाद उसमें शराब उड़ेल दी। लल्लन ने शराब का एक तगड़ा घूँट भरा, इसी बीच उमरसिंह का जाल देखने के लिए वे उठे तो अपना जाम धीर को पकड़ाते गए। धीर ने भी आव-देखा न ताव जाम चढ़ा लिया। इसी तरह की गफलत में उसने दो और जाम चढ़ा लिया। कुछ ही देर में वो शिथिल हो गया। जम कर पी कर और भगोने में पकी मछलियाँ खा कर शिकारियों की नाव फिर घाट की तरफ चल पड़ी।

लेकिन, घर पहुँचते-पहुँचते ही धीर की हालत खराब हो गई। घर के दरवाजे पर ही वह बेहोश हो कर गिर पड़ा। शिकारी भी टुन्न थे। जब वह बेहोश हो कर गिरा तो लल्लन

को कुछ होश आया। ऐसी हालत कैसे हो गई। इसके कारण तलाशे जाने लगे। अब ये बात सामने आई कि धीर ने तीन डिब्बे पिए थे। यह भी होने लगा कि उसे पीने के लिए तो कहा नहीं था फिर उसने क्यों पी। उसे तो केवल पकड़ने के लिए कहा था।

धीर की साँसें जोर-जोर से चलने लगीं। कुछ लोगों ने बताया कि देर तक पानी डालने से नशा उतरने लगता है। उसका शरीर शिथिल पड़ने लगा। उसे पानी से नहलाया जाने लगा। उसका सारा शरीर भीगा हुआ था। माँ दौड़ कर आई। उसने धीर का माथा सहलाना शुरू किया। मोहल्ले भर के लोगों की भीड़ लगने लगी। सब इकट्ठा हो गए। एक तरफ चार चाहा और एक सुरखाब पड़े हुए थे। सुरखाब की गर्दन बालू में लिपटी हुई थी। उसकी चोंच से अभी भी लार निकल रही थी। दूसरी तरफ, धीर को उल्टियाँ शुरू हो गईं। भीड़ और कोलाहल में किसी को कुछ सूझ ही नहीं रहा था कि क्या किया जाए। घर में रोना-पीटना मचने लगा।

धीर को उल्टियाँ करते हुए देख कर अचानक ही अंची ने पलट कर सुरखाब की तरफ देखा। मुँह की लार मुँह में ही सूखने लगी थी। उसके शानदार सुनहरे पंखों में गीली बालू जगह-जगह चिपकी हुई थी। कुछेक पंख खून से भी भीगे हुए थे। उसने सुना हुआ था कि सुरखाब हमेशा जोड़े में रहते हैं। तो क्या इस सुरखाब को गोली लगने के बाद इसका जोड़ा वहाँ वापस आया होगा। हाँ, जरूर आया होगा। लौटने पर उसे अपना सुरखाब नहीं मिला होगा। जमीन पर बस उसके घिसटने के निशान बने हुए हैं... खून की कुछ बूँदें पड़ी हुई हैं... यहीं पर उसके सुरखाब की चोंच घिसड़ी थी... यहीं पर उसकी लार गिरी थी... यहीं पर अपनी चकवी को याद करते हुए चकवे ने प्राण त्याग दिए थे। अब चकवी क्या करेगी। अंची की कल्पना में बालू में चीत्कार करती एक सुरखाब का चित्र सजीव हो उठा। सुरखाब हर तरफ उसे खोज रही है। उसकी तलाश कर रही है। इस उम्मीद में कि कहीं उसका सुरखाब किसी सरपत के झुंड में न छुप गया हो, वह वहाँ भी तलाशती है। उसे बार-बार आवाज देती है। लेकिन, सुरखाब नहीं है। सुरखाब अपनी चोंच बालू में घसीट रही है। लथोड़ रही है। उसके पंख पर गीली बालू चिपटने लगी है। उसके मुँह से भी लार बहने लगी है। क्या अपने चकवे की याद में चकवी ने ऐसे ही दम तोड़ दिया होगा? और जिन पंखों को नोच कर अपनी किताबों में सजाने की कल्पना अंची ने कर रखी थी, वे पंख पानी में भीग कर, बालू में लिथड़ कर अपनी सुंदरता खो चुके थे। बड़े भाई की हालत देख कर छोटे की आँखें भीग गईं।

'

https://www.hindiadda.com/surakhab-ke-pankh/